TEXT

नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला–३४

सैय्यद इंशाअल्लाह खाँ लिखित

रानी केतकी की कहानी

—— :o: ——

संपादक

श्यामसुंदरदास

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
1925

रानी केतकी की कहानी

—— :o: ——

यह वह कहानी है कि जिसमें हिंदी छुट।
और न किसी बोली का मेल है न पुट॥

सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया। आतियाँ जातियाँ जो साँसें हैं, उसके बिन ध्यान यह सब फाँसें हैं। यह कल का पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रक्खे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़वा कसैला क्यों हो। उस फल की मिठाई चक्खे जो बड़े से बड़े अगलों ने चक्खी है।

देखने को दो आँखें दीं और सुनने को दो कान।
नाक भी सब में ऊँची कर दी मरतों को जी दान॥

मिट्टी के बासन को इतनी सकत कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके। सच है, जो बनाया हुआ हो, सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे और क्या कहे। यों जिसका जी चाहे, पड़ा बके। सिर से लगा पाँव तक जितने रोंगटे हैं, जो सबके सब बोल उठें और सराहा करें और उतने बरसों उसी ध्यान में रहें जितनी सारी नदियों में रेत और फूल फलियाँ खेत मे हैं, तो भी कुछ न हो सके, कराहा करें। इस सिर झुकाने के साथ ही दिन

रात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को जिसके लिये यों कहा है—जो तू न होता तो मैं कुछ न बनाता; और उसका चचेरा भाई जिसका ब्याह उसके घर हुआ, उसकी सुरत मुझे लगी रहती है। मैं फूला अपने आप में नहीं समाता, और जितने उनके लड़के-बाले हैं, उन्हीं को मेरे जी में चाह है। और कोई कुछ हो, मुझे नहीं भाता। मुझको उस घराने छुट किसी चोर ठग से क्या पड़ो! जीते और मरते आसरा उन्हीं सभों का और उनके घराने का रखता हूँ तीसों घड़ी।

डौल डाल एक अनोखी बात का

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े-लिखे, पुराने-धुराने, डाँग, बूढ़े घाग यह खटराग लाए। सिर हिलाकर, मुँह थुथाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आँखें फिराकर लगे कहने—यह बात होते दिखाई नहीं देती। हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का। मैंने उनकी ठंडी साँस का टहोका खाकर झुँझुलाकर कहा—मैं कुछ ऐसा बढ़-बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलकर उँगलियाँ नचाऊँ, और बे-सिर बे-ठिकाने की उलझी-सुलझी बातें सुनाऊँ। जो मुझ से न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता? जिस ढब से होता, इस बखेड़े को टालता।

इस कहानी का कहनेवाला यहाँ आपको जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं, कह सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेरकर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाता ने चाहा तो यह ताव-भाव, राव-चाव और कूद-फाँद, लपट-झपट दिखाऊँ जो देखते ही आप के ध्यान का घोड़ा, जो बिजली से भी बहुत चंचल अचपलाहट में है, हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय।

टुक घोड़े पर चढ़ के अपने आता हूँ मैं।
करतब जो कुछ है, कर दिखाता हूँ मैं॥
उस चाहनेवाले ने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ, कर दिखाता हूँ मैं।

अब आप कान रख के, आँखें मिला के, सन्मुख होके टुक इधर देखिए, किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल की पंखड़ी जैसे होठों से किस-किस रूप के फूल उगलता हूँ।

कहानी के जोबन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिंगार

किसी देश में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ-बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पंद्रह बरस भरके उनने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ योंही सी उसकी मसें भींनती चली थीं। अकड़-तकड़ उसमें बहुत सारी थीं। किसी को कुछ न समझता था। पर किसी बात के सोच का घर-घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उनने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को

अपने घोड़े पर चढ़के अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता-भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई, तो उसका जी लोट-पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सब छोड़ छाड़कर घोड़ा फेंका। कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई, तब तो कुँवर उदैभान भूखा, प्यासा, उनींदा, जँभाइयाँ, अगड़ाइयाँ लेता, हक्का-बक्का होके लगा आसरा ढूँढ़ने। इतने में कुछ एक अमरइयाँ देख पड़ीं, तो उधर चल निकला; तो देखता है जो चालीस-पचास रंडियाँ एक से एक जोबन में अगली झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा—तू कौन? तू कौन? की चिंघाड़-सी पड़ गई। उन सभों में एक के साथ उसकी आँख लग गई।

कोई कहती थी यह उचक्का है।
कोई कहती थी एक पक्का है।

वही झूलनेवाली लाल जोड़ा पहने हुए, जिसको सब रानी केतकी कहती थीं, उसके भी जी में उसकी चाह ने घर किया। पर कहने-सुनने को बहुत सी नाँह-नूह की और कहा—"इस लग चलने को भला क्या कहते हैं! हक न धक, जो तुम झट से टहक पड़े। यह न जाना, यहाँ रंडियाँ अपने झूल रही हैं। अजी तुम जो इस रूप के साथ इस रव बेधड़क चले आए हो, ठंडे-ठंडे चले जाओ।" तब कुँवर ने मसोस के मलोला खाके कहा—"इतनी रुखाइयाँ न कीजिए। मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह में ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा। बड़े तड़के धुँधलके में उठकर जिधर को मुँह पड़ेगा चला जाऊँगा। कुछ किसी का लेता देता नहीं। एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़-छाड़कर घोड़ा फेंका था। कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब तलक उजाला रहा उसके ध्यान में था। जब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया, इन अमरइयों का आसरा ढूँढ़कर यहाँ चला आया हूँ। कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता। सिर उठाए हाँपता चला आया। क्या जानता था—यहाँ पद्मिनियाँ पड़ी झूलती पेंगें चढ़ा रही हैं। पर यों बदी थी, बरसों मैं भी झूला करूँगा।"

यह बात सुनकर वह जो लाल जोड़ेवाली सबकी सिरधरी थी, उसने कहा—"हाँ जी, बोलियाँ ठोलियाँ न मारो और इनको कह दो जहाँ जी चाहे, अपने पड़ रहें; और जो कुछ खाने को माँगें, इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तमतमाए, और होंठ पपड़ाए, और घोड़े का हाँपना, और जी का काँपना, और ठंडी साँसें भरना, और निढाल हो गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं। पर हमारे इनके बीच कुछ ओट कपड़े-लत्ते की कर दो।" इतना आसरा पाके सब से परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे, उनको छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धरकर चाहता था कि सो रहें, पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी? पड़ा-पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात साँयँ-साँयँ बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रहीं, रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगाकर यों कहा—"अरी ओ, तूने कुछ सुना है? मेरा जी उस पर आ गया है; और किसी डौल से थम नहीं सकता। तू सब मेरे भेदों को जानती है। अब होनी जो हो सो हो; सिर रहता रहे, जाता जाय। मैं उसके पास जाती हूँ। तू मेरे साथ चल। पर तेरे पाँवों पड़ती हूँ, कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनानेवाले ने मिला दिया। मैं इसी जी में इस अमरइयों

में आई थी।" रानी केतकी मदनबान का हाथ पकड़े हुए वहाँ आन पहुँची, जहाँ कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ-कुछ सोच में बड़बड़ा रहे थे। मदनबान आगे बढ़के कहने लगी—"तुम्हें अकेला जानकर रानी जी आप आई हैं।" कुँवर उदैभान यह सुनकर उठ बैठे और यह कहा—"क्यों न हो, जी को जी से मिलाप है?" कुँवर और रानी दोनों चुप चाप बैठे; पर मदनबान दोनों को गुदगुदा रही थी। होते होते रानी का वह पता खुला कि राजा जगतपरकास की बेटी है और उनकी माँ रानी कामलता कहलाती हैं। "उनको उनके माँ-बाप ने कह दिया है-एक महीने पीछे अमरइयों में जाकर भूल आया करो' आज वही दिन था; सो तुम से मुठभेड़ हो गई। बहुत महाराजों के कुँवरों से बातें आईं, पर किसी पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धन भाग जो तुम्हारे पास सबसे छुपके, मैं जो उनके लड़कपन की गोइयाँ हूँ, मुझे अपने साथ लेके आई हैं। अब तुम अपनी बीती कहानी कहो—तुम किस देस के कौन हो।" उन्होंने कहा—"मेरा बाप राजा सूरजभान और माँ रानी लछमीबास हैं। आपस में जो गँठजोड़ हो जाय तो कुछ अनोखी, अचरज और अचंभे की बात नहीं। योंही आगे से होता चला आया है। जैसा मुँह वैसा थप्पड़। जोड़ तोड़ टटोल लेते हैं। दोनों महाराजों को यह चितचाही बात अच्छी लगेगी, पर हम तुम दोनों के जी का गँठजोड़ा चाहिए।" इसी में मदनबान बोल उठी—"सो तो हुआ। अपनी अपनी अँगूठियाँ हेर-फेर कर लो और आपस में लिखौती लिख दो। फिर कुछ हिचर-मिचर न रहे।" कुँवर उदैभान ने अपनी अँगूठी रानी केतकी को पहना दी; और रानी ने भी अपनी अँगूठी कुँवर की उँगली में डाल दी; और एक धीमी-सी चुटकी भी ले ली। इसमें मदनबान बोली—"जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई। मेरे सिर चोट है। इतना बढ़ चलना

अच्छा नहीं। अब उठ चलो और इनको सोने दो; और रोएँ तो पड़े रोने दो। बातचीत तो ठीक हो चुकी।" पिछले पहर से रानी तो अपनी सहेलियों को लेके जिधर से आई थी, उधर को चली गई और कुँवर उदैभान अपने घोड़े को पीठ लगाकर अपने लोगों से मिलके अपने घर पहुँचे।

पर कुँवर जी का रूप क्या कहूँ। कुछ कहने में नहीं आता। न खाना, न पीना, न मग चलना, न किसी से कुछ कहना, न सुनना। जिस स्थान में थे उसी में गुथे रहना और घड़ी घड़ी कुछ सोच-सोच-कर सिर धुनना। होते होते लोगों में इस बात की चरचा फैल गई। किसी किसी ने महाराज और महारानी से कहा—"कुछ दाल में काला है। वह कुँवर उदैभान, जिससे तुम्हारे घर का उजाला है, इन दिनों में कुछ उसके बुरे तेवर और चेडौल आँखें दिखाई देती हैं। घर से बाहर पाँव नहीं धरता। घरवालियाँ जो किसी डौल से बहलातियाँ हैं, तो और कुछ नहीं करता, ठंडी ठंडी साँसें भरता है। और बहुत किसी ने छेड़ा तो छपरखट पर जाके अपना मुँह लपेट के आठ आठ आँसू पड़ा रोता है।" यह सुनते ही कुँवर उदैभान के माँ-बाप दोनों दौड़े आए। गले लगाया, मुँह चूम पाँव पर बेटे के गिर पड़े, हाथ जोड़े और कहा—'जो अपने जो की बात है, सो कहते क्यों नहीं? क्या दुखड़ा है जो पड़े पड़े कराहते हो? राज-पाट जिसको चाहो, दे डालो। कहो तो, क्या चाहते हो? तुम्हारा जी क्यों नहीं लगता? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता? मुँह से बोलो, जी को खोलो। जो कुछ कहने से सोच करते हो, अभी लिख भेजो। जो कुछ लिखोगे, ज्यों की त्यों करने में आएगी। जो तुम कहो कूँएँ में गिर पड़ो, तो हम दोनों अभी गिर पड़ते हैं। कहो—सिर काट डालो, तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।" कुँवर उदैभान, जो बोलते ही न थे, लिख भेजने का आसरा पाकर